International Journal of Sanskrit Research 2022; 8(1): 288-291

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2022; 8(1): 288-291
© 2022 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 29-11-2021
Accepted: 15-01-2022

डॉ. विद्याधर सिंह
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू, जम्मू कश्मीर, भारत

Corresponding Author:
डॉ. विद्याधर सिंह
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू, जम्मू कश्मीर, भारत

सामवेदीय ब्राह्मणग्रन्थों में पठित आचरणीय सूत्र

डॉ. विद्याधर सिंह

प्रस्तावना

वैदिक संहिताओं में मन्त्रसंख्या की दृष्टि से सामवेद सबसे छोटा है, परन्तु महत्त्व की दृष्टि से कम नहीं है। श्रीमद्भगवद्गीता के गायक ने 'वेदानां सामवेदोऽस्मि'[1] कहकर इसकी महिमा को ही प्रकट किया है। वैसे तो ब्राह्मणग्रन्थों का प्रमुख विषय याज्ञिक कर्मकाण्ड की व्याख्या तथा विवरण प्रस्तुत करना है और इस विशाल ब्राह्मण–साहित्य में विशेषतः यज्ञों के विधि–विधान को ही उद्घाटित किया गया है, परन्तु इनमें इनके अतिरिक्त कुछ और भी सन्देश दिये गये हैं, जिन्हें इनके प्रणेता ऋषियों ने यज्ञ के माध्यम से ही कह दिया है।

सामवेदीय ब्राह्मणग्रन्थों में मुख्य रूप से सोमयागों और साम–गान से सम्बन्धित विषयों का विवेचन है, परन्तु इसी के साथ ही यज्ञों के वर्णन–प्रसङ्ग में भिन्न–भिन्न स्थलों पर हमारे जीवन से सम्बन्धित बहुमूल्य बातें विवेचित हैं। यज्ञों के वर्णन–प्रसङ्ग में इन बातों के निर्देश का अभिप्राय यही है कि यज्ञ अत्यन्त पवित्र और महान् कर्म है। इसमें किसी भी प्रकार की त्रुटि या प्रमाद नहीं आना चाहिए, क्योंकि यज्ञ में त्रुटि या प्रमाद के आ जाने से यथेष्ट फल की प्राप्ति नहीं होती और इस प्रकार सारा परिश्रम निष्फल हो जाता है। लेकिन ये उपदेश या निर्देश यज्ञवेदि या यज्ञ–काल तक के लिए ही सीमित नहीं हैं, अपितु ये जीवनयज्ञ में भी आचरणीय हैं। यज्ञों को विधि–विधान से करने के लिए जीवनोपयोगी जो ये निर्देश हैं, इनके आचरण से मनुष्य का चरित्र उन्नत हो सकता है। इनमें वर्णित नैतिक चेतना का स्तर इतना उत्कृष्ट और परिष्कृत है, जिसे मनुष्य अपने जीवन का अंग बनाकर स्वयं को संयत और महान् बना सकता है। यहाँ इन्ही महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर संक्षिप्त रूप में प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है, परन्तु इससे पूर्व सामवेद के सम्बन्ध में कुछ बातें प्रासङ्गिक लगती हैं।

साम शब्द का अर्थ : 'साम' शब्द 'षो अन्तकर्मणि' धातु में मनिन् प्रत्यय के योग निष्पन्न होता है[2], जिसका अर्थ है – जिसके आचरण या गान करके तदनुसार आचरण करने से पाप करने की प्रवृत्ति का अन्त हो जाता है, उसे साम कहते हैं। साम शब्द 'साम–सान्त्वप्रयोगे' धातु से भी बनता है, जिसका अभिप्राय है – जिससे मानसिक शान्ति की प्राप्ति हो। उणादिकोष के वृत्तिकार के अनुसार जिसका गान किया जाय, उसे साम कहते हैं।[3] आचार्य यास्क के अनुसार 'साम' शब्द तीन प्रकार से – सम् उपसर्ग पूर्वक 'माद् माने' धातु से, 'षो अन्तकर्मणि' धातु से तथा सम् उपसर्ग पूर्वक 'मन ज्ञाने' या 'मनु अवबोधने' धातु से बनता है[4], जिसका संक्षिप्त तात्पर्य क्रमशः इस प्रकार है – जो ऋचाओं के समान छन्दोबद्ध हो, जिसके गान करने से मानसिक अशान्ति और दुःख का अन्त हो तथा जो ऋचा के समान ज्ञानयुक्त हो, उसे साम कहते हैं।

सामवेद, वस्तुतः गान का वेद है। ऋग्वेद के मन्त्र जब विशिष्ट गान–पद्धति में गाए जाते हैं, तो उन्हें 'साम' कहते हैं।[5] छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है – 'या ऋक् तत् साम'[6] अर्थात् जो ऋचा है, वही साम है। 'ऋचि अध्यूढं साम'[7] अर्थात् साम ऋचा पर आधारित है। वह ऋचा को छोड़कर अन्य किसी आश्रय में नहीं रह सकता। ब्राह्मणग्रन्थों में 'साम' शब्द की निष्पत्ति 'सा' और 'अम' से बताई गई है। 'सा' का अर्थ है – 'वाणी' तथा 'अम' का अर्थ है – 'प्राण' अर्थात् वाणी और प्राण के मिलने से जो संगीत प्रकट होता है, उसे साम कहते हैं।[8] छान्दोग्योपनिषद् कहती है – 'वाक् च प्राणश्च ऋक् च साम च'[9] अर्थात् वाणी और प्राण क्रमशः ऋक् और साम हैं। वाणी ऋचा है और प्राण साम है।[10] जैसा सम्बन्ध वाणी और प्राण का है, वैसा ही सम्बन्ध ऋचा और साम का है। ऋग्वेद और सामवेद के युग्म को पति–पत्नी के युग्म की भाँति माना गया है।[11]

सामवेद की शाखाएँ : महर्षि पतञ्जलि ने महाभाष्य के प्रथम आह्निक में ऋग्वेद की जहाँ इक्कीस, यजुर्वेद की एक सौ एक और अथर्ववेद की नौ शाखाएँ बताई हैं, वहीं वे सामवेद की एक सहस्र

शाखाओं के होने की बात कहते हैं।[12] इसी प्रकार आथर्वण परिशिष्ट चरणव्यूह में भी कहा गया है – तत्र सामवेदस्य शाखा सहस्रमासीत्। यही बात प्रप४चहृदय के द्वितीय अर्थात् वेदप्रकरण में भी कही गई है – तत्र सामवेदः सहस्रधा। सामवेद के गान–प्रधान होने के कारण संगीत की विपुलता तथा सूक्ष्मता को ध्यान में रखकर विचार करने पर यह संख्या कल्पनातीत नहीं लगती, परन्तु सत्यव्रत सामश्रमी और दामोदर सातवलेकर ने पत४जलि द्वारा पठित 'सहस्रवर्त्मा' में 'वर्त्मन्' शब्द को शाखावाचक ने मानकर सामगान की विभिन्न पद्धतियों को सूचित करने वाला बताया है।[13] डॉ. कपिलदेव द्विवेदी भी 'वर्त्मन्' शब्द से सामवेद की एक सहस्र शाखाओं के होने सम्बन्धी मन्तव्य को सर्वथा समीचीन नहीं मानते हैं, क्योंकि गोभिल–गृह्यप्रकाशिका के नित्याह्निक प्रयोग में तेरह सामग आचार्यों – राणायनि, सात्यमुग्रि, व्यास, भागुरि, और्गूण्डि, गैल्गुलवि, भानुमानौपमन्यव, कराटि, मशंक गार्ग्य, वार्षगव्य, कौथुमि, शालिहोत्रि जैमिनि तथा दश प्रवचनकारों – शटि, भाल्लवि, काल्बवि, ताण्ड्य, वृषाण (वृषगण), शमबाहु, रुरुकि, अगस्त्य, बप्कशिरा और हूहू का तर्पण करना लिखा है।[14] इसी प्रकार खादिरगृह्यसूत्र की टीका में तेरह आचार्यों तथा दश प्रवचनकारों का संकेत मिलता है।[15] चूरणव्यूह की टीका तथा जैमिनिगृह्यसूत्र[16] में भी तेरह आचार्यों के नाम मिलते हैं। सम्भवतः सामवेद की विपुल बहुसंख्यक शाखाएँ किसी समय रही होंगी परन्तु उनमें से अधिकांश का लोप हो गया। वर्तमान में इसकी केवल तीन ही शाखाएँ उपलब्ध हैं – राणायनीय, कौथुमीय और जैमिनीय या तलवकार।

सामवेद के ब्राह्मणग्रन्थ : जिस प्रकार सामवेद की शाखाओं की संख्या सर्वाधिक बतायी गई है, उसी प्रकार इसके ब्राह्मणग्रन्थों की संख्या भी सबसे अधिक है। कुमारिलभट्ट ने सामवेद के ब्राह्मणग्रन्थों की संख्या आठ बतायी है।[17] आचार्य सायण भी यही बात कहते हैं,[18] परन्तु इतिहासकारों, समालोचकों ने सामवेदीय ब्राह्मणग्रन्थों की संख्या ग्यारह बतायी है, जो निम्नलिखित हैं – ताण्ड्यमहाब्राह्मण (पंचविंश ब्राह्मण), षड्विंशब्राह्मण (अद्भुत ब्राह्मण), सामविधान ब्राह्मण, आर्षेय ब्राह्मण, दैवत (देवताध्याय) ब्राह्मण, उपनिषद् ब्राह्मण (मन्त्रब्राह्मण छान्दोग्यब्राह्मण), संहितोपनिषद् ब्राह्मण, वंशब्राह्मण, जैमिनीय या तलवकार ब्राह्मण, जैमिनीय आर्षेय ब्राह्मण और जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण।

सामवेदीय ब्राह्मणग्रन्थों में विवेचित आचार विषयक बातों का वर्णन संक्षेप में इस प्रकार से है –

यज्ञमय जीवन : वेद में हमारे शरीर को यज्ञ के लिए बताया गया है।[19] सामवेदीय ब्राह्मणग्रन्थों में भी मनुष्य का जीवन यज्ञरूप में परिकल्पित है, जिसमें वाणी होतृस्थानीय है, चक्षु अध्वर्यु है, मन ब्रह्मा है, श्रोत्र उद्गाता है, शरीर के अन्य अंग सहायक ऋत्विक् हैं और चक्षुओं के मध्य विद्यमान आकाश सदस्य है।[20] षड्विंश ब्राह्मण में ही एक अन्य स्थल पर प्राणादि को होतृ–अध्वर्यु आदि कहा गया है।[21] यज्ञमय या यज्ञरूप जीवन का अभिप्राय यही है कि हम अपनी सम्पूर्ण ज्ञानेन्दियों और कर्मेन्द्रियों से जो कुछ भी जानें और करें, वह व्यक्ति और समाज के कल्याण के लिए हो। जीवन के प्रत्येक कर्त्तव्य को यागगत क्रतू मानकर उसे विधिवत् सम्पन्न करने से ही ऐहिक और पारलौकिक सफलता सम्भव है। हम उत्तम विचार और आचार के इतने अभ्यस्त हो जाएँ कि सम्पूर्ण दिव्यभाव अपने निवास के लिए हमारी इस शरीरपुरी को प्रसन्नता और उत्सुकतापूर्वक अपने निवास के लिए चुनें। ताण्ड्यब्राह्मण के वचनानुसार यजमान और ऋत्विक् को यजशाला में प्रविष्ट होने से पूर्व सभी प्रकार के दुष्कृत्यों का परित्याग कर देना चाहिए[22], क्योंकि जब तक दुष्ट कर्मों का परित्याग नहीं होता, तब तक व्यक्ति यज्ञ का अधिकारी नहीं हो पाता और जब तक मन से बुरी भावनाओं का त्याग नहीं होता, तब तक दुष्कर्मों का भी त्याग नहीं हो सकता। अतः जीवनयज्ञ का अनुष्ठान करने वालों के लिए सर्वप्रथम मन से दुर्भावनाओं का त्याग आवश्यक है।

सत्य का साधना : सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में मानव को जीवन में सत्याचरण का निर्देश दिया गया है। ताण्ड्यब्राह्मण में कहा गया है – हे मनुष्यो तुम सत्य–धारण के पात्र बनो।[23] वह अपने जीवन में सत्याचरण का संकल्प लेता हुआ कहता है – मैं सत्य के सदन में आसीन होता हूँ।[24] असत्य–भाषण को वाणी का छिद्र माना गया है[25], अर्थात् जिस प्रकार छिद्र में से सब कुछ गिर जाता है, उसी प्रकार अनृतवादी की वाणी में से सब कुछ गिर जाता है। उसके शब्दों में कोई प्रभाव नहीं रहता है। षड्विंशब्राह्मण का कथन है कि जिनके मन, वाणी और कर्म, तीनों ही सत्ययुक्त हैं, उन्होंने देवत्व को प्राप्त कर लिया है।[26] यज्ञ की आत्मा 'स्वाहा' सत्य से ही उत्पन्न है।[27] सामविधानब्राह्मण सत्य–सम्भाषण पर बल देते हुए कहता है – मनुष्य को सत्य बोलना चाहिए और अनार्यों के साथ सम्भाषण नहीं करना चाहिए।[28] इसी तरह देवताध्याय ब्राह्मण में प्रार्थना की गई है – ज्ञान और सत्य मेरी रक्षा करें।[29] ताण्ड्यब्राह्मण में देवों से प्रार्थना करते हुए कहा गया है कि मेरा मन, तेज, ज्ञान कल्याणभाव और सत्य से संयुक्त हो, जिससे मैं चारुतम वाणी को बोल सकूँ।[30] वाणी की पवित्रता को बनाये रखने के लिए निर्देश है कि किसी के पापपूर्ण कृत्य का कथन कभी नहीं करना चाहिए।[31] वाणी की यह शुद्धि तभी संभव है, जब उसे मन से विचार कर प्रयोग किया जाय, अन्य शब्दों में सोच–समझकर बोला जाय। जैसा कि ताण्ड्यब्राह्मण कहता है – वचं मनसा ध्यायेत्।[32] वाणी और मन पर विचार करते हुए दोनों को रथ के दो पहिओं की भाँति परस्पराश्रित बताया गया है[33], अर्थात् जैसे रथ का गमन एक पहिए से सम्भव नहीं है, वैसे ही केवल वाणी या मन की सार्थकता नहीं है। वस्तुतः मन जो कुछ सोचता है, वाणी उसी को बोलती है। ताण्ड्यब्राह्मण में कहा गया है कि मिथ्या–भाषण करने वाले व्यक्ति का, व्यक्ति ही नहीं, अपितु देवगण भी परित्याग कर देते हैं। वे उसके द्वारा यज्ञ में प्रदत्त आहुति को स्वीकार नहीं करते।[34] इसमें एकाह यज्ञ के सन्दर्भ में कहा गया है कि ऋत्विग्गण यज्ञ–मण्डप में सत्य वचनों का उच्चारण करते हुए प्रसर्पण करते हैं और इसी से वे स्वर्ग–लोक में पहुँचते हैं।[35]

ज्ञान–प्रशंसा : सामवेदीय ब्राह्मणग्रन्थों में सत्य के साथ ही ज्ञान की महत्ता भी वर्णित है। षड्विंशब्राह्मण के अनुसार मनुष्य ज्ञान के गौरव से देवत्व की कोटि में पहुँच जाता है।[36] जो व्यक्ति ज्ञानपूर्वक यज्ञानुष्ठान करता है, उसका यज्ञ निदर्क्षष होता है।[37] सामविधानब्राह्मण की एक आख्यायिका के अनुसार मनुष्यों के द्वारा प्रजापति से स्वर्गलोक में जाने के सम्बन्ध में प्रश्न पूच्छने पर प्रजापति ने उन्हें स्वाध्याय और तप का मार्ग बताया।[38] सावित्री की उपासना भी स्वाध्याय की ही श्रेणी में आती है, जिससे मानव–मन के राग–उेषादि सारे कलुष मिट जाते हैं।[39]

आचार्य–शिष्य का आचरण : सामवेदीय ब्राह्मणग्रन्थों में आचार्य और शिष्य से सम्बन्धित एक विशिष्ट आचारसंहिता का विधान मिलता है। संहितोपनिषद् ब्राह्मणग्रन्थ में आचार्य को निर्देश देते हुए कहा गया है कि विद्या की सब प्रकार से सुरक्षा करनी चाहिए, क्योंकि वह मूल्यवान निधि है।[40] इसी में आगे कहा गया है कि भले ही विद्या के साथ ही मृत्यु क्यों न हो जाय, परन्तु ऊषर स्थान में कभी भी उसका वपन नहीं करना चाहिए[41], किन्तु सुपात्र शिष्य को पाकर उसकी अवहेलना भी नहीं करनी चाहिए, अर्थात् उसे पढ़ाना चाहिए।[42] इसी के साथ आचार्य के प्रति शिष्य का भी कर्त्तव्य बताते हुए कहा गया है कि वह गुरु का अपमान कभी न करे, उससे द्रोह न करे, उसे माता–पिता समझे, जिसने उसे विद्या प्रभृति विशेष दान दिया है।[43] इस ब्राह्मणग्रन्थ में विद्या–दान को गोदान और भूमिदान की भाँति अतिदान समझा गया है[44] और कहा गया है कि इससे समस्त कामनाओं की पूर्ति हो जाती है।[45]

तपोमय जीवन : सामवेदीय ब्राह्मणग्रन्थों में तपस्या का भी गौरवगान हुआ है। तप से मनुष्य का चरित्र समुज्ज्वल होता है।

षड्विंशब्राह्मण के अनुसार इस भूमि पर जो कुछ भी है, वह तपस्या से ही समुद्भूत है, अर्थात् देवों के तप से ही समस्त सारभूत तत्त्व, गार्हपत्यादि अग्नियाँ एवं अन्य सभी वस्तुएँ उत्पन्न हुई हैं।[46] व्यक्ति को तप करने के लिए प्रेरित करते हुए कहा गया है कि इस पृथिवी पर जो कुछ भी श्रेष्ठ है, समृद्धियाँ हैं, वे सब तपस्या में रत व्यक्तियों को ही प्राप्त हुई हैं।[47]

अन्य आचरणीय बातें : सामविधान ब्राह्मण के अनुसार व्यक्ति घर में सेवकों और आये हुए अतिथियों को भोजन कराने के पष्चात् ही अवशिष्ट अन्न का भोजन करे। उसे अतिथियों को यथाशक्ति धनादि भी देना चाहिए तथा ऋतुगामी होना चाहिए। इस प्रकार के आचरण वाले व्यक्ति का अग्निहोत्र कभी लुप्त नहीं होता और उसे दर्शपौर्णमास यज्ञ के अनुष्ठान का फल प्राप्त होता है।[48] यज्ञाग्नि भी अतिथि है। वह अतिथिरूप में ही उपस्थित होता है और यजमान यज्ञ से पूर्व खा लेता है तो देवता उसकी हवि को ग्रहण नहीं करते। अतः यज्ञ को नष्ट होने से बचाने के लिए बिना खाये ही यज्ञ में देवों को हवि अर्पित करनी चाहिए। इसक साथ ही सामवेदीय ब्राह्मणग्रन्थों में उन दुर्बलताओं एवं विकृतियों का भी उल्लेख करते हुए सचेत किया गया है, जो उसके चरित्र का पतन करने वाले हैं। छान्दोग्यब्राह्मण में कहा गया है कि स्वर्ण–तस्कर, सुरापान करने वाला, गुरु स्त्रीगामी और किसी की हत्या करने वाला, ये चारों तो पतित हैं ही, परन्तु इनसे सम्बन्ध रखने वाला व्यक्ति भी पतित है।[49] ताण्ड्यब्राह्मण में चोरी करने वाले व्यक्ति को समाज का शत्रु बताया गया है।[50] इसमें ब्रह्मचर्य का पालन न करने वाले तथा कृषि एवं वाणिज्य का व्यवसाय न करने वाले लोगों को हीन समझा गया है।[51] ऐसे लोगों को जो दूसरों के अन्न को बलपूर्वक खा जाते हैं, किसी के उचित कथन में भी दोष खोजते हैं, अदण्डनीय व्यक्तियों पर दण्ड से प्रहार करते हैं, उन्हें विषभक्षक कहा गया है।[52]

सामविधानब्राह्मण में आचार–सम्बन्धी पतन के सूचक कुछ अन्य दोष भी वर्णित हैं। जैसे – अश्लील एवं परुष–भाषण, गुरुजनों से व्यर्थ के वाद–विवाद, अनध्याय–अध्यापन, अयाज्य अर्थात् यजानुष्ठान में अनधिकृत व्यक्ति द्वारा याजन, अमेध्य का दर्शन तथा घ्राण, अभोज्य–भोजन, अमेध्य–प्राशन, सुरापान, भ्रूणहत्या एवं ब्रह्महत्या आदि, राज–प्रतिग्रह (राजा से बिना आवश्यकता के दान लेना), अदत्त–आदान तथा रस–विक्रय आदि। यदि किसी व्यक्ति के द्वारा अनिच्छा या प्रमादवश कोई अपराध हो जाय और वह इसका प्रायश्चित करना चाहता हो तो सामविधानब्राह्मण में इसके लिए विभिन्न प्रायष्चित वर्णित हैं, जिनके अनुष्ठान से व्यक्ति पुनः शुद्ध होकर मानसिक ग्लानि से मुक्त हो जाता है। इसमें कहा गया है कि कृच्छ[a], अतिकृच्छ्र[b] और कृच्छ्रातिकृच्छ्र[c] के पालन से व्यक्ति सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है।

इस प्रकार सामवेदीय ब्राह्मणग्रन्थों में मनुष्य की दुर्बलताओं के दृष्टिगत इनसे पृथक् रहते हुए स्वच्छ और निर्मल जीवन–यापन का सन्देश दिया गया है।

[a] कृच्छ्र व्रत की अवधि 12 दिनों की होती है। इन 12 दिनों में से प्रथम तीन दिन लवणादि से रहित अन्न प्रातःकाल ग्रहण कर पुनः अगले दिन प्रातः–काल ही खाना होता है। अगले तीन दिन रात्रि को एक ही बार अन्न खाना होता है। इसके बाद अगली रात्रि में ही अन्न लेना होता है। इसके बाद अगले तीन दिन बिना माँगे अन्न मिल जाय तो खा लेना चाहिए, अन्यथा नहीं। अन्तिम तीन दिन उपवास करना होता है। साम वि.ब्रा. 1.2.2–5

[b] कृच्छ्र व्रत के समान अतिकृच्छ्र व्रत की अवधि भी 12 दिनों की होती है। इसमें भोजनादि के सभी नियम कृच्छव्रत के ही समान हैं। इसमें केवल भोजन की मात्रा में अन्तर है। भोजन की मात्रा के अन्तर्गत – दाएँ हाथ की मुट्ठी में जितना भोजन आए उतना ही कृच्छ्र–विधि के अनुसार खाना चाहिए। साम वि.ब्रा. 1.2.8–9

[c] कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रत में केवल जल का ही ग्रहण किया जाता है। कृच्छ्र व्रत में भोजन ग्रहण किया जाता है परन्तु इसमें उसी विधि से जल ग्रहण करने का विधान है।
साम वि.ब्रा0 1.2.10

सन्दर्भ

1. श्रीमद्भगवद्गीता 10.22
2. सातिभ्यां मनिन्मणिनौ, उणादिकोष 4.154
   अशान्तिदुःखादिकं च यत् तत् साम। स्यति समापयति पापम्
3. षो अन्तकर्मणि अनेकार्थत्वकत्वाद् गाने वर्तते सीमते गीयते इति सामवेदः।
   उणादिकोष 4.154 श्वेतवनवासीवृत्ति
4. साम सम्मितम् ऋचा स्यतेर्वा, ऋचां समं मेने इति नैदानाः। निरुक्त 7.12
5. गीतिषु सामख्या। मीमांसा दर्शन 2.1.36
6. छान्दोग्योपनिषद् 1.3.4
7. वही 1.6.1
8. सा च अमश्चेति तत् साम्नः सामत्वम्। शत.ब्रा. 14.4.1.24
   प्राणो वाव अमो वाक् सा तत् साम। ज.उ.ब्रा. 4.11.2.3
9. छान्दोग्योपनिषद् 1.1.5
10. वागेव सा प्राणोऽमस्तत्साम। वही 1.7.1
11. अथर्व. 14.2,71, ऐत.ब्रा. 8.27, ब.आ.उ. 6.4.20
12. एकशतमध्वर्युशाखाः सहस्रवर्त्मा सामवेदः, एकविंशतिधा बाहृवृच्यं नवधाथर्वणो वेदः।
    महा. प्रथम पस्पशाह्निक
13. सामवेद संहिता, 1996 वि. (1939 ई.), श्री दामोदर सातवलेकर द्वारा सम्पादित संस्करण की भूमिका पृ. 1–2 – सं.सा. का स. इतिहास (डॉ. कपिलदेव द्विवेदी) सं. 2016, पृ. 59–60 से उद्धृत
14. वै.वा. का इति. (पं. भगवद्दत्त), प्रथम भाग, पृ. 239–240 से उद्धृत
15. खादिरगृह्यसूत्र 3.2.14 की टीका
16. जै.गृ.सू., तर्पण प्रकरण 1.14
17. तन्त्रवार्तिक 1.3.12
18. सा.वि.ब्रा.भाष्य, उपक्रमणिका
19. इयं ते यज्ञिया तनूः। यजु. 4.13
20. षड्विंश ब्राह्मण 1.6.2
21. वही 1.1.15
22. विहाय दौष्कृत्यम्। ता.ब्रा. 1.1.3
23. ऋतुपात्रमसि।वही 1.2.3
24. ऋतस्य सदने सीदामि। वही 1.2.2
25. एतद्वाचश्छिद्रं यदनृतम्। वही 8.6.13
26. त्रिसत्या हि देवाः। षड्विंश ब्राह्मण 1.1.9
27. स्वाहा वै सत्यसम्भूता। वही 5.7.22
28. सत्यं वदेत्, अनार्यैर्न सम्भाषेत। सा.वि.ब्रा. 1.2.7
29. ब्रह्म सत्यं च पातु माम्। देवता.बा. 1.4.5
30. ताण्ड्यब्राह्मण 1.3.9
31. यो वै पापं कीर्तयति तृतीयमेवाशं पाप्मनो हरति। वही 5.6.10
32. वही 6.7.8
33. षड्विंश ब्राह्मण 11.1.3
34. देवता वा एतं परिव्रजन्ति यमनृतमभिशं सन्ति। ता.ब्रा. 18.1.11
35. ऋतमुक्त्वा प्रसर्पन्त्यृतेनैवैनं स्वर्गं लोकं गमयन्ति। वही 18.2.29
36. अथहैते मनुष्यदेवाः ये ब्राह्मणाः शुश्रुवांसोऽनूचानास्ते मनुष्यदेवाः। षड्विंश ब्राह्मण 1.1.29
37. एवं विदुषो ह वै यज्ञो न व्यथते। वही 2.7.9
38. सामविधानब्राह्मण 1.1.17
39. देवताध्याय ब्राह्मण 1.4.3
40. संहितोपनिषद् ब्राह्मण 3.9
41. विद्यया सार्धं म्रियेत, न विद्यामूषरे वपेत्। वही 3.10
42. सतश्च न विमानयेत्। वही 3.19
43. वही 3.13
44. त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथिवी सरस्वती। वही 4.12
45. दानेन सर्वान् कामानवाप्नोति। वही 4.1
46. षड्विंश ब्राह्मण 5.1.2

47. तपश्चितो देवाः सर्वामृद्धिमार्ध्नुवन्। ता.ब्रा. 25.5.3
48. सामविधान ब्राह्मण 1.3.5
49. छा.ब्रा. 5.10.9
50. ये वै स्तेना रिपवस्ते। ता.ब्रा. 4.7.5
51. हीना वा एते हीयन्ते ये नहि ब्रह्मचर्य्यं चरन्ति न कृषिं वाणिज्याम्। वही 17.1.2
52. वही 17.1.9